

पाठ्य पुस्तकों में समाहित द्वेष-पाठ

□ तीस्ता सीतलवाड़

अनुवाद : प्रेमचन्द गांधी

पाठ्य पुस्तकों में समाहित पूर्वाग्रहों और द्वेष भाव का विश्लेषण करने के प्रयास शिक्षा के क्षेत्र में लगभग नगण्य हैं। ऐसा क्यों है - यह सवाल भी विचलित करने वाला है। बहरहाल हम पाठ्यपुस्तकों को लेकर किये गये दो विशद् अध्ययनों का संक्षेप प्रस्तुत कर रहे हैं। पहले तीस्ता सीतलवाड़ का अध्ययन, तीस्ता सक्रिय कार्यकर्ता, अध्याता और 'कम्युनलिज्म कौम्बेट' (मुम्बई) पत्रिका की संपादक हैं।

इतिहास के बारे में हम जो पढ़ते हैं और इतिहास के पठन-पाठन की जो प्रक्रिया विकसित की गई है, वह अतीत की घटनाओं के प्रति हमारी दृष्टि निर्धारित करती है। इतिहास के प्रति हमारी यही दृष्टि वर्तमान और भविष्य के बारे में सोचने-समझने की शक्ति को प्रभावित करती है। यदि यह ज्ञान समृद्ध और वैविध्यपूर्ण हो तो वह शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के विश्वास को बना सकता है अन्यथा तोड़ भी सकता है।

1947 में भारत के विभाजन के साथ ही एक ऐतिहासिक नियति जुड़ गई। व्यापक एवं सावधानीपूर्वक किए गए विचार विमर्श के बाद विभाजित होकर ही सही, हम स्वतंत्र हुए। हमने एक लोकतांत्रिक ढांचा स्वीकार किया, जिसे संविधान में भी अंगीकार किया गया। चाहे वह राज्य द्वारा निर्देशित हो या स्वायत्त रूप में स्वीकार की गई हो, इस प्रकार की लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षा को, स्वतंत्र जानकारी, ज्ञान के लिए स्वच्छ और समान पहुंच के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए। शिक्षा की यह प्रतिबद्धता परिमाण और श्रेष्ठता दोनों दृष्टियों से होनी चाहिए और उसमें बहस मुबाहिसे और असमति का भी अधिकार होना चाहिए। बालक को किस प्रकार का ज्ञान दिया जाए और उस पर क्या प्रतिबंध हों तथा इन प्रतिबंधों की सीमा कब और क्या हो यह सिर्फ शैक्षणिक दृष्टि से निर्धारित होना चाहिए।

संक्षेप में देखें तो किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में समानता के सिद्धांत की परिधि में शिक्षा को भी शामिल किया जाना चाहिए। परिमाण की दृष्टि से इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक भारतीय बालक को प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का अधिकार होना चाहिए। यूनिसेफ के आंकड़े बड़ी बेशर्मी से हमें बताते हैं कि आजादी के पचास साल बाद भी हमारे 37 करोड़ (1991) लोग निरक्षर हैं। गुणात्मक दृष्टि से भी भारतीय शिक्षा के पाठ्यक्रम में समानता का सिद्धांत, बहुत दुखद स्थिति में है। फिर चाहे राज्यों के शिक्षा बोर्ड

हों या केंद्र का, विशेष रूप से इतिहास और समाज विज्ञानों का अध्यापन अत्यंत पीड़ादायक हालत में है।

शिक्षा में समानता के सिद्धांत के प्रति समर्पित होने पर, हमारे इतिहास एवं समाज विज्ञान के पाठ्यक्रमों के जनतांत्रिकरण का अर्थ होना चाहिए था - काल निर्धारण दृष्टिकोण और पाठ्यसामग्री का विवेकपूर्ण पुनरावलोकन, क्योंकि स्वतंत्रता पूर्व का इतिहास लेखन औपनिवेशिक द्वेष भावना के तहत किया गया था। लेकिन ऐसा कोई पुनरावलोकन नहीं हुआ। नतीजा यह निकला कि अधिकांश पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रमों में हम औपनिवेशिक उत्तराधिकार के रूप में प्राचीन भारत को हिन्दू काल और मध्यकाल को मुस्लिम काल के रूप में दिखाते रहे हैं। सालों से हम इसी औपनिवेशिक विद्वेष को पोषित कर रहे हैं। और उधर राजनीतिक हल्कों में हिंदू उभार या हिन्दुत्व का जो उभार आया है उसने भी इस औपनिवेशिक विद्वेष को और मजबूत किया है।

किसी भी लोकतंत्र में भाषाई घृणा और राजनैतिक घृणा इतिहास अध्यापन का अंग नहीं हो सकता। एक प्रकार से नफरत की भाषा और नफरत की राजनीति लोकतंत्र में नहीं चल सकती। लेकिन दुर्भाग्य से हमारे पाठ्यपुस्तक मंडलों और उनके चुने हुए लेखकों में साफ-स्वच्छ दृष्टि के स्थान पर नफरत और बंटवारा ही दिशा निर्देशक सिद्धांत (गाइडिंग प्रिंसिपल) बना हुआ है।

बरसों से हमारे इतिहास और सामाजिक ज्ञान की पाठ्यपुस्तकें इतिहास को अधिकाधिक द्वेषपूर्ण ढंग से पेश करने और बालकों की ऐसी समझ पैदा करने का काम कर रही हैं जो ऐतिहासिक साक्ष्यों पर जरा भी आधारित नहीं है। इस लेख में विभिन्न राज्य शिक्षा बोर्ड्स, आई सी एस ई तथा महाविद्यालयों की पाठ्यपुस्तकों से विस्तृत उद्धरणों के माध्यम से ऐसे तथ्य उद्घाटित किए गए हैं जो बेहद महत्वपूर्ण हैं। इन उद्धरणों से पता चलता है कि इतिहास सम्मत होते हुए भी अनेक तथ्य या तो छोड़ दिये गये हैं या इस

प्रकार शामिल किये गये हैं कि उनसे इतिहास के साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश की गई है। ये उद्धरण लम्बे भी हैं, कृपया अन्यथा न लें, धैर्य के साथ पढ़ें। (उद्धरण एवं विस्तृत जानकारी के लिए देखें, 'कम्युनलिज्म कॉम्बेट' अक्टूबर, 1999 अंक सं.)

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा दूसरे कट्टरपंथी संगठनों द्वारा एक सुविचारित राजनैतिक उद्देश्य से हमें इतिहास के बारे में जो विश्वसनीय ढंग से बताया जाता है। वह एनसीईआरटी की रिपोर्ट 1991 में बताया गया है। इस रिपोर्ट में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो प्रायोजक संस्था के पक्षपात को स्पष्ट तौर पर दर्शाते हैं।

चिंताजनक और गौरतलब ही नहीं जांचने योग्य भी पहलू यह है कि विभिन्न राज्यों के पाठ्यपुस्तक मंडलों की पुस्तकें क्या कर रही हैं। इसी के साथ यह भी देखना होगा कि राष्ट्रीय स्तर के प्रमुख पाठ्यपुस्तक मंडलों की पुस्तकें भी वही ऐतिहासिक ज्ञान, अज्ञान और निरुपण प्रस्तुत कर रही हैं जो राज्यों के पाठ्यपुस्तक मंडलों की पुस्तकें कर रहीं हैं। कहीं यह तरल या छितरे हुए रूप में है तो कहीं व्यापक पैमाने पर, लेकिन आम तौर पर दोनों ही स्थितियों में दूसरे समान खतरनाक नतीजे स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

कम उम्र विद्यार्थियों के लिए सामान्य पाठ्यक्रम और खासकर इतिहास और सामाजिक ज्ञान के पाठ्यक्रम जिन खतरनाक तरीकों से बुने गये हैं उनकी जांच की जानी चाहिए। इनसे पता चलता है कि औसत भारतीय पाठ्यपुस्तकें ऐतिहासिक और वर्तमान भेदभावों के प्रश्नों को किस नजरिए से देखती हैं। ये सवाल चाहे सांप्रदायिक द्वेष से प्रेरित हों या आम तौर पर प्रचलित हों, ये पुस्तकें बताती हैं कि हम नारी जाति की ऐतिहासिक और वर्तमान स्थिति के बारे में क्या पढ़ा रहे हैं और कैसे पढ़ रहे हैं।

पढ़ने के ये रंग ढंग जो न केवल विकृत हैं बल्कि पक्षपातपूर्ण भी हैं, उस प्रक्रिया के विषय में हमारी आंखें खोल देंगे, जिसमें धर्मनिरपेक्षता में वास्तविक योगदान करने वाली मुख्यधारा के बरक्स दक्षिणपंथ का वर्चस्व और विमर्श बढ़ता जा रहा है। तभी हम यह समझ पाएंगे कि कैसे कुछ भाषणों और स्वप्न-छवियों की तात्कालिक और व्यापक अनुगूंजे, जो पिछले डेढ़ दशक से आम जनता के लिए परोसी जा रही हैं, नागरिक समाज पर असर डालती रही हैं।

अंततः मैं कहना क्या चाहती हूँ? अस्सी के दशक में मुस्लिमों को 'बाबर की औलाद' करके संकेत किया गया और नब्बे के दशक में ईसाइयों के खिलाफ 'जबरन धर्मपरिवर्तन' का लांछन लगाया गया।

इन दोनों कुत्सित प्रयासों ने किस प्रकार बाजार में लोकप्रिय विचार का स्थान बना लिया और आज भी मीडिया पर हावी हैं, जनतामें तो खैर है ही। ऐसा इसलिए संभव हो सका है कि स्वतंत्रता

प्राप्ति के बाद की अधिकांश पाठ्यपुस्तकें एक स्वच्छ, स्पष्ट, विवेकपूर्ण और बहुआयामी ढंग से अतीत को पेश नहीं कर सकीं। इस अतीत में यह भी शामिल है कि किस प्रकार विभिन्न धार्मिक विश्वास इस उप-महाद्वीप के किनारे आ लगे। दरअसल हमारी पाठ्य पुस्तकें इसी प्रकार और संदेहजनक ढंग से इस बात पर चुप्पी साधे हुए हैं कि पीढियों से हजारों भारतीयों द्वारा विभिन्न धार्मिक विश्वासों को अंगीकार करने के पीछे क्या उद्देश्य था। बजाय इस चुप्पी को तोड़ने के, पाठ्यपुस्तकें अनेक भ्रांतियों के पोषण और तथ्यों के बहिष्कार द्वारा इस झूठे दावे को पक्का करती हैं कि धर्मांतरण अधिकांश मामलों बलपूर्वक ही किया गया था। क्या नागरिकों के रूप में हम इसके लिए चिंतित हैं कि -

- (1) क्या हमारी शिक्षा प्रणाली रचनात्मक और वैचारिक प्रक्रियाओं को बढ़ावा देती है ?
- (2) क्या यह शिक्षा प्रणाली हमारे किशोर-नौजवान विद्यार्थियों में वैचारिक गुणवत्ता का विकास करती है ?
- (3) क्या इस शिक्षा प्रणाली से सीखने और सिखाने की हमारी प्रवृत्ति जांच पड़ताल को प्रक्रिया को भी विकसित करती है?

यदि हां तो हमें यह जांचने की जरूरत है कि हमारे स्कूलों की पाठ्यपुस्तकें स्वतंत्र जांच, वैचारिक असहमति और उस पर स्वतंत्र बहस के प्रश्न को किस तरह उठाती हैं। हमें इस पर भी ध्यान देने की जरूरत है कि इन पुस्तकों की सामग्री में कौनसे विशेष तथ्य शामिल किए गए हैं और कौन से छोड़ दिए गए हैं।

इनके अलावा भी कुछ महत्वपूर्ण सवाल हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। इस उपमहाद्वीपमें जाति, जन्म-स्थान, संस्कृति और धार्मिक विश्वास के आधारभूत प्रश्न को भारतीय पाठ्य पुस्तकें किस नजरिए से देखती हैं ?

वैश्विक संदर्भ में रंगभेद की चर्चा नेल्सन मंडेला का नाम लिए बिना नहीं की जा सकती, जिनके नेतृत्व में दक्षिण अफ्रीका का एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में जन्म हुआ। आधुनिक संदर्भ में दासता को अफ्रीका में औपनिवेशिक शक्तियों के ज्ञान के बिना नहीं समझा जा सकता। और इसी प्रकार अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम और अब्राहम लिंकन के बारे में जानना भी इतना ही महत्वपूर्ण है। लेकिन क्या भारतीय पाठ्य पुस्तकों में सामाजिक विषमता खासकर जाति व्यवस्था जिस रूप में उभरी और जिस तरह उसे ऐतिहासिक तौर पर वैध करार दे दिया गया और जो आज भी एक शोषण भरी और अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बरकरार रखती हुई आज भी विद्यमान है।

क्या सामाजिक ज्ञान का कोई भी किशोर-युवा विद्यार्थी आज के सामाजिक और आर्थिक भेदभाव (जिसके अंतर्गत आज भी

16-17 प्रतिशत आबादी रहने को विवश है) को समझे बिना सचमुच जाति व्यवस्था को समझ सकता है ? शायद ही कोई पाठ्य पुस्तक हो जो आज भी मौजूद दलित-बहिष्कार का ईमानदारी के साथ स्पष्ट और निष्पक्ष विवरण प्रस्तुत करती हो।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जीवन-वृत्तांत भारतीय संविधान के 'शिल्पी' तक सीमित करके रख दिया गया है। स्वतंत्रता-पूर्व के संघर्ष और ब्राह्मणवादी व्यवस्था, अथवा 'सामाजिक और राजनैतिक आजादी' के लिए बौद्ध धर्म अंगीकार कर लेने (14 अक्टूबर, 1948 को दस लाख दलितों ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था) जैसे डॉ. अम्बेडकर के जीवन के अत्यंत महत्वपूर्ण प्रसंग 'धर्म निरपेक्ष' भारतीय पाठ्यपुस्तकों में उद्धरण के योग्य तक नहीं समझा गया।

भारतीय समाज की विसंगति की धूमिल दृष्टि इससे भी समझी जा सकती है जिस तरह से डॉ. अम्बेडकर और उनके द्वारा चलाए गए आंदोलन का जिक्र कम उम्र विद्यार्थियों के लिए किया गया है। 25 दिसंबर 1925 को महाराष्ट्र के महाड गांव में डॉ. अम्बेडकर ने मनुस्मृति की प्रतियां जलाई थीं। यह दलितों का एक जबर्दस्त राजनैतिक विरोध का तरीका था, जो आधिपत्य बर्दाश्त करने के खिलाफ प्रयोग किया गया। 'मनुस्मृति' वस्तुतः एक ब्राह्मणवादी ग्रंथ है जिसमें सामाजिक व्यवस्था की आचार संहिता दी गयी है और इसमें बताया गया है कि शूद्रों और स्त्रियों दोनों को किसी प्रकार के अधिकार नहीं हैं। इस घटना का किसी भी भारतीय पाठ्यपुस्तक में उल्लेख नहीं है, जो यह साबित करता है किस तरह सवर्ण जातियां पक्षपात करती हैं और उन्होंने इन घटनाओं और आन्दोलनों की वास्तविक जानकारी छिपाई है। यह जानबूझकर नजरअंदाज किया गया मामला है। मनुस्मृति जैसे प्राचीन ग्रंथों पर समीक्षात्मक दृष्टिकोण से देखने के कोई प्रयत्न नहीं हुए। ऐसे ग्रंथों में निहित स्वार्थ के कारण विशेष दृष्टि दी गई है। सचाई तो यह है कि भारतीय विद्यालयों की पाठ्यपुस्तकों में इस ब्राह्मणवादी ग्रंथ की प्रशस्ति ही की गई है।

इसी तर्क के विस्तार में जाएं तो पता चलेगा कि कुछ औसत भारतीय पाठ्यपुस्तकों में ईसाई, मुस्लिमान और पारसियों को विदेशी करार दिया गया है। यहां तक कहा गया है कि अनेक राज्यों में हिंदू अल्पसंख्यक हैं। इन पुस्तकों में मध्यकाल में कैथोलिक पादरियों के अनैतिक व्यवहार के चुन-चुन कर उदाहरण दिए गए हैं, जबकि ब्राह्मणों और शासक वर्ग को निर्दोष छोड़ दिया गया है। ब्राह्मणों और उच्च वर्ग के आचरण के प्रसंग में इस प्रकार की तथ्यात्मक गलतबयानी और कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को जानबूझकर छोड़ देने तथा अधुनातन सामाजिक यथार्थ को छिपाने से हम अपने बढ़ते हुए बच्चों को क्या संदेश देना चाहते हैं ?

उपर्युक्त संदर्भ महाराष्ट्र की एक कॉलेज पाठ्यपुस्तक के विषय में है। इसी पुस्तक में विस्तार से बल्कि खूब जहर उगलते हुए इस्लाम और उसकी हिंसक प्रवृत्ति की चर्चा की गई है। लेकिन प्राचीन काल में बौद्ध मठों और कुछ भिक्षुओं के साथ अनेक भारतीय राजाओं ने जो किया उस पर चुप्पी साध ली गई है। (असम के राजा शशांक ने अनेक बौद्ध मठों को नष्ट किया था।) इस तरह चुन चुन कर छोड़ी गई या शामिल की गई घटनाओं एवं विवरणों के पीछे क्या मंशा है ? इनसे आलोचक को क्या अर्थ निकालना चाहिए ?

इस तरह जानबूझकर छोड़ना द्वेष या पक्षपात का सबसे बारीक तरीका है। इसलिए, यदि औसत भारतीय पाठ्यपुस्तक उन हिन्दू राजाओं के उद्देश्यों व मंशाओं के बारे में चुप है, जिन्होंने प्राचीन व मध्यकाल के मंदिरों पर धावा बोलकर उन्हें नष्ट करने के लिए अपने यहां विशेष अधिकारी नियुक्त किए, तो सिर्फ इसलिए कि वे राजा उन मंदिरों में अथाह संपत्ति होने के बारे में आश्वस्त होना चाहते थे। कश्मीर का राजा हर्ष देव ऐसा ही एक राजा था, जिसका उल्लेख प्राचीन संस्कृत कवि कल्हण ने *राजतरंगिणी* में किया है। तो ऐसे प्रसंगों को जानबूझकर छोड़ देना एक ऐसी बारीक-सूक्ष्म कोशिश है जो इस जनव्यापी धारणा को प्रबल करती है कि मंदिर तोड़ना तो मुस्लिम शासकों का ही काम था।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा शिशु मंदिरों में इतिहास पढ़ाने के लिए बनाई गई पाठ्य पुस्तकों में इस्लाम और ईसाईयत के बारे में निहायत ही कट्टरपंथी ढंग से टिप्पणियां की गई हैं। जब हम आरएसएस जैसे संगठनों की विचारधारा की वास्तविक प्रकृति को समझ जाते हैं तो इस प्रकार 'दूसरे शत्रु' के खिलाफ जहर की थोड़ी किन्तु प्रभावशाली डोज का इंजेक्शन देने की बात पर टिप्पणी करने वाले प्रेक्षकों और शिक्षाशास्त्रियों के लिए यह कोई आश्चर्यजनक नहीं होता।

एनसीईआरटी की समिति ने आरएसएस की पाठ्यपुस्तकों की तीव्र आलोचना की थी। आरएसएस द्वारा संचालित विद्यालयों की पुस्तकों में इस प्रकार की घातक और हानिकारक सामग्री होना एक अलग बात है। किन्तु तथाकथित धर्मनिरपेक्ष भारतीय पाठ्य पुस्तकें भी जाति, संप्रदाय और लिंगभेद के बारे में ऐसे ही द्वेषपूर्ण विवरणों से भरी पड़ी है और ये पुस्तकें राज्यों के पाठ्यपुस्तक मण्डलों द्वारा तैयार की गई हैं। और इनकी डिग्री स्तर तक और कहीं कहीं तो आईसीएसई स्तर तक के लिए सिफारिश की गई है। इससे साफ पता चलता है कि किस प्रकार इस द्वेष और पक्षपात ने मुख्यधारा के भारतीय विचारों द्वारा इतिहास की द्वेषपूर्ण और अविवेकपूर्ण व्याख्या को ही नहीं निगल लिया है, बल्कि बड़ी शान से संकीर्ण

विचारों को भावी पीढ़ियों तक पहुंचने की सुविधा उपलब्ध करा रहा है ।

उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में बी.ए. (अंतिम वर्ष) के छात्रों के लिए अनुशासित इतिहास की पाठ्यपुस्तक को ही लें । 'महमूद गजनवी का आक्रमण' शीर्षक अध्याय का लेखक ने बड़ी चतुराई के साथ इस्लाम के खिलाफ जेहाद छेड़ने के लिए इस्तेमाल किया है । इस पाठ्यपुस्तक की सामग्री की तुलना यदि शिशु मंदिरों की पाठ्यसामग्री से करें तो इनमें जबर्दस्त समानता मिलेगी । दोनों की पाठ्यसामग्री जहां सीधे कटाक्ष करती है, वहीं इस्लाम या ईसाइयत के बारे में कुछ भी सकारात्मक टिप्पणी नहीं करती ।

इतिहास और सामाजिक ज्ञान की हमारी पाठ्य पुस्तकों ने लिंग के जटिल प्रश्न को कितने विवेकपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है? इन पाठ्यपुस्तकों में लिंग संबंधी विषयों की व्याख्याओं का आधार क्या है ? पतिव्रता, सती, बाल विवाह, स्त्री दहन (मध्यकाल में चुड़ैल या डायन कह कर स्त्री को जला देना), बहुविवाह आदि विषयों के बारे में ये पाठ्यपुस्तकें हमारे बच्चों को क्या समझाती हैं?

प्राचीन ब्राह्मणवादी ग्रंथ 'मनुस्मृति' में जो कुछ वर्णित है, स्त्री के विषय में उससे ज्यादा अपमानजनक और कुछ नहीं हो सकता । लेकिन इस ग्रंथ का उल्लेख बिना किसी विवेकपूर्ण आलोचना के अधिकांश भारतीय पाठ्यपुस्तकों में हुआ है । मनुस्मृति में वर्णित दमनकारी 'ब्राह्मणवादी हिंदू आचार संहिता' का सार-संक्षेप देने का कोई प्रयास ही नहीं किया गया । इस ग्रंथ में जो आधार संहिता दी गई है उसने सामाजिक या पारिवारिक ढांचे में स्त्री के प्रति समाज या परिवार के व्यवहार को बुरी तरह प्रभावित किया है । स्त्री किस तरह से इन ढांचों में रहती आई है और आज भी रह रही है और उसे कैसे रहना चाहिए, यही आचार संहिता का मूल है । और इसी प्रकार भारतीय समाज में शूद्रों के प्रति होने वाले व्यवहार को भी इस ग्रंथ की आचार संहिता ने प्रभावित किया है ।

भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न धार्मिक विश्वासों के उद्भव के पीछे कौन से बहुवर्णी तथ्य हैं और इसलिए कौनसी बहुस्तरीय सच्चाइयां हैं, जिन पर गौर किया जाना चाहिए ? ऐतिहासिक विवरण 'बाबर की औलाद' करने जितना सरलीकृत नहीं होता । तलवारों से लैस होकर जबरन अपने आधिपत्य में आए हुए लोगों से जबरन धर्मान्तरण करवा लेना और मंदिरों को नष्ट भ्रष्ट कर देना भी कहने में आसान और रूमानी लगता है किंतु इतिहास और ऐतिहासिक तथ्यों को इतने रूमानी ढंग से भी नहीं देखा जाना चाहिए, और न ही देखा जा सकता है । बदकिस्मती से नफरत से भरे इतिहास के समर्थन के लिए ऐतिहासिक तथ्य एक अलग ही कहानी कहते हैं ।

गोवा में पुर्तगाली ईसाइयों द्वारा जबरन धर्मान्तरण करवा लेने की घटना शायद ज्यादा नई है, लेकिन यह पूरी कहानी नहीं है जो यह बता सके कि कैसे ईसाई धर्म इस उप महाद्वीप तक पहुंचा और इसने यहां कैसे अपनी जड़ें गहरी कर लीं यह जानकारीपरक कहानी जितनी जटिल है, उतनी ही विविधतापूर्ण और विवरणों में अधिक समृद्ध भी है ।

विभिन्न धर्म स्वीकार कर लेने वाले व्यक्तियों, चाहे वे बौद्ध जैन, सिक्ख, मुस्लिम या ईसाई कुछ भी हों, का रिकार्ड ढूंढना अपने आप में एक जटिल और महत्वपूर्ण काम है । ईमानदारी की बात तो यह है कि इससे उन विचारों और उद्देश्यों की अंतर्दृष्टि और अन्तः प्रेरणाओं की जानकारी मिलती है जो युगों से मनुष्य मात्र को प्रेरित करती आई हैं । फिर भी यह एक ऐसा विषय है जिसे सामान्य रूप से नजरअंदाज कर दिया जाता है और केवल समन्वय और संश्लेषण के कुछ सामान्य संदर्भ देकर छोड़ दिया जाता है तथा विषय एवं अवधारणा के स्तर पर बिना अनुसंधान के आगे बढ़ा जाता है ।

धर्मान्तरण और धार्मिक विश्वासों का परिवर्तन एक ज्ञानवर्धक विषय है, तो सिर्फ इसलिए कि यदि ठीक तरीके से समझा जाए तो धर्मान्तरण का कार्य और धर्मान्तरण के कारण (जिनसे कोई व्यक्ति एक धर्म छोड़कर दूसरे धर्म को अपनाता है) हमें उन उद्देश्यों की जानकारी भी दे सकते हैं, जिनसे धर्मान्तरण ऐतिहासिक रूप में सहज संभव होते हैं । धर्मान्तरण के मामलों में अन्तर (फर्क) और वैविध्य काल और स्थान पर निर्भर करते हैं । किस काल में धर्मान्तरण हुए और भारत के किस भाग में हुए, यह जानने के बाद ही हम उन तरीकों का समझ सकेंगे, जिनसे धर्मान्तरण हुए ।

किसी भी भारतीय पाठ्य पुस्तक ने इस विषय के साथ न्याय नहीं किया । इस्लाम के भारत आगमन के संबंध में हमें प्रायः एक वाक्य मिलता है कि भारत के साथ लम्बे समय तक चले अरब सौदागरों के व्यापार के कारण नियमित रूप से भारत के मलाबार तट पर आने वाले अरब सौदागरों के साथ इस्लाम भारत आया । लेकिन अगले ही वाक्य में बात को एकदम बदल दिया जाता है । और कहा जाता है कि भारतीय उप महाद्वीप में सिंध की तरफ से होने वाले लगातार मुगल आक्रमणों के जरिए इस्लामी भारत आये । इसके बाद विद्यार्थियों को लगातार हमलों की एक अनंत गाथा सुनाई जाती है । लेकिन कहीं भी यह नहीं बताया जाता कि अरब सौदागरों के भारत के साथ व्यापारिक रिश्तों के कारण इस्लाम भारत आया और इसलिए यहां उस काल में बसने वाले समुदायों के बारे में भी नहीं बताया जाता ।

आधुनिक इतिहास में इस्लाम या ईसाई धर्म के रूप में धर्मान्तरण बंधुआ मजदूरों की मुक्ति के कानून बन जाने के बाद

मजदूरों की आजादी के साथ घटित हुए। बंधुआ मजदूरी की समाप्ति ने शोषित पीड़ित मजदूरों को अपना धार्मिक विश्वास चुनने की आजादी भी दे दी। अब इसे सही कहें या गलत, इस पीड़ित वर्ग ने धार्मिक विश्वास चयन की इस स्वतंत्रता का उपयोग करते हुए इस्लाम या ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया जो उन्हें हिन्दू धर्म की दमनकारी जाति व्यवस्था से कहीं अधिक समतावादी महसूस हुए। इसमें कोई दो राय नहीं कि अधिकांश बंधुआ मजदूर हिन्दू धर्म के दलित वर्ग (शूद्र) से थे और उनका यह धर्मान्तरण कदाचित्त उस शोषक जाति व्यवस्था के खिलाफ एक किस्म का विद्रोह भी था।

उदाहरण के लिए, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में त्रावणकोर में धर्मान्तरण की अनेक घटनाएं हुईं। ईसाई मिशनरियों के शिक्षा संबंधी प्रयासों और सामाजिक समानता का स्तर प्राप्त करने की मंशा ने निम्न समझी जाने वाली अनेक जातियों के लोगों को धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित किया और इससे उन्हें बराबरी का दर्जा महसूस होने लगा। मसलन, 1851 में तिरुवल्ला के मंदिर के पास वाली सार्वजनिक सड़क पर चलने वाला नीची जाति का पहला व्यक्ति एक ईसाई था। 1859 के आसपास इसी क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों द्वारा समर्थित संघर्षों के दौरान हजारों लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। उदाहरण के लिए, नाडार जाति की स्त्रियों ने अपने शरीर का ऊपरी भाग ढका रखने के अधिकार के लिए जबर्दस्त संघर्ष किया था, क्योंकि ऊंची जाति वाले इसकी इजाजत नहीं देते थे कि नीची जाति की स्त्रियां अपने शरीर का ऊपरी भाग ढका रखें।

ऐसे अनेकों विचित्र उदाहरण मिलेंगे। मलाबार तट पर बड़े पैमाने पर धर्मान्तरण टीपू सुल्तान के हमलों के वक्त नहीं हुए थे बल्कि 1843 से 1890 के दौरान हुए थे। इसका प्रत्यक्ष संबंध इस तथ्य से है कि सन् 1843 में अंग्रेजों ने उस क्षेत्र से औपचारिक रूप से गुलामी की प्रथा समाप्त कर दी थी। इसके परिणामस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में उन लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया जो पहले शोषित थे और उच्च जातियों के हिंदुओं के यहां बंधुआ मजदूर थे। इसे गलत कहें या सही, लेकिन उन लोगों को लगता था कि ऐसा करने से उन्हें समान समझा जाएगा और उनके साथ न्याय होगा।

व्यापार और वाणिज्य का स्थान हमारी पाठ्यपुस्तकों में बहुत ही रूखे सूखे तरीके से किया गया है और एक तरह से इन्हें हाशिए पर ही रखा गया है, जैसे कि इतिहास में हुए तकनीकी विकास के प्रभावों को प्रस्तुत करने में किया जा रहा है। विचार और चिंतन की प्रक्रिया किस प्रकार सरहदें लांघकर द्वीपो-महाद्वीपों की यात्रा करती हैं, यह जानने की कोशिश किए बिना ही धार्मिक व्याख्याएं और स्पष्टीकरण बलपूर्वक थोप दिए जाते हैं और संचार के साधनों और तरीकों की शायद ही कभी छान-बीन की जाती है।

भारतीय उपमहाद्वीप में, इसी शताब्दी ने देखा कि किस तरह विभिन्न धार्मिक विश्वासों की धाराएं उभर कर आई हैं और सबने मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ आजादी के लिए संघर्ष में अपना योगदान किया। इस सदी ने यह भी देखा कि किस तरह इस उपमहाद्वीप में अंग्रेजों द्वारा परोक्षतः प्रेरित वृहत्तर राष्ट्रीय आन्दोलन अनूठे रूप में उभर कर आया और इस आंदोलन ने लोगों की विश्व दृष्टि को संकुचित धार्मिक पहचान से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति भी मौजूद थी।

कुछ ही सालों के फासले में हमने हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग के साथ-साथ अकाली दल और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठनों की उत्पत्ति भी देखी। विभिन्न साम्प्रदायिकताओं के उदय की प्रक्रिया का उल्लेख भारतीय पाठ्य पुस्तकों में बड़े ध्यान से चुन चुन कर किया गया है। इन साम्प्रदायिकताओं ने बदला लेने और आतंक फैलाने की अपनी तमाम खौफनाक कहानियों से इस उप महाद्वीप के अंतिम विभाजन को रोकने में कोई भूमिका नहीं निभाई, बल्कि आज तो वे अनेक विभाजनों को बढ़ाने का ही काम कर रही हैं।

ये तमाम पाठ्य पुस्तकें मुस्लिम सांप्रदायिक संगठन मुस्लिम लीग, जिसने तत्कालीन राजनीति में महत्वपूर्ण भागीदारी की थी, के गुनाहों के बारे में विस्तार से बताती हैं, लेकिन लगभग उसी समय जन्मी हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जिक्र तक नहीं करती जो विशुद्ध रूप से हिंदू सांप्रदायिक संगठन है और जिन्होंने उस समय तीव्र ध्रुवीकरण किया और अलगाव की भावनाओंको बढ़ाने में जबर्दस्त योगदान किया।

महात्मागांधी की हत्या का एक हवाई किस्म का विवरण है। इसमें उस विचारधारा का विवेचन तो दूर तक नहीं किया गया है जिसने गोडसे को गांधी जी की हत्या के लिए प्रेरित किया था। यह तथ्य भी इतिहास के विद्यार्थी से छिपा कर रखा गया है कि गांधी जी की हत्या के कारण से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को पाबंदी का सामना करना पड़ा था।

हमारी नियमित पाठ्यपुस्तकों में इस प्रकार की गलत व्याख्याओं और गलत ऐतिहासिक तथ्यों को शामिल करना आज के सभ्य समाज में बार-बार दोहराए जाने वाले भाषणों और बहसों के साथ एक खतरनाक रूप ले चुका है और खास तौर पर विभाजन का दोष पूरी तरह मुस्लिमों पर डाल दिया जाए तो क्या वह (मुस्लिम) संप्रदाय जो इस देश का नागरिक होते हुए भी 'देशद्रोही' और राष्ट्रविरोधी के लाछनों का बोझ लगातार उठाता रहे ?

इसलिए भारत में इतिहास के कम उम्र के विद्यार्थी उप महाद्वीप के विभाजन का दोष बिना संकोच के मुस्लिम लीग और मोहम्मद

अली जिन्ना के कंधों पर डाल सकता है। यह पक्षपात यहीं साम्प्रदायिक नहीं होता। औसत भारतीय पाठ्यपुस्तक में मुस्लिम लीग का व्यापक ब्यौरा मिलता है किंतु इसके समानान्तर पाठ्य पुस्तक में हिंदू सांप्रदायिक संगठनों के बारे में एक पंक्ति तक नहीं दी जाती है।

इसी बात को आगे बढ़कर देखें तो पता चलता है कि यह जानने और वर्णित करने की जरा भी कोशिश नहीं की गई कि

- (1) मुस्लिम लीग का प्रभाव मुस्लिम समुदाय के मुट्ठीभर भद्रजनों और जमींदारों तक ही सीमित था,
- (2) हजारों मुसलमानों ने अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया।
- (3) देश विभाजन का विचार भारतीय मुसलमानों के एक छोटे से समूह द्वारा उछाला गया था और
- (4) मजदूर- कारीगर वर्ग जो कि मुस्लिम समुदाय का एक बहुत बड़ा हिस्सा है, ने विभाजन के खिलाफ सक्रिय रूप से प्रदर्शन किए थे।

संक्षेप में यदि आप औसत भारतीय पाठ्यपुस्तक पढ़ें, चाहे वह राज्य पाठ्यपुस्तक मंडल की हों या केंद्रीय पाठ्य पुस्तक मंडल की, तो आपको पता चलेगा कि इनमें कहीं भी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू महासभा के विभाजन के लिए ऐतिहासिक रूप से दोषी नहीं ठहराया गया है। और यह अपराध बोध तब और बढ़ जाता है जब महात्मा गांधी की हत्या को गलत तरीके से प्रस्तुत किया जाता है और आम तौर पर एक वाक्य में निपटा दिया जाता है।

आईसीएसई की कक्षा दस की इतिहास एवं नागरिक शास्त्र (भाग दो) पाठ्यपुस्तक में मुस्लिम लीग के गठन पर पूरा एक अध्याय है, लेकिन यहां हिंदू साम्प्रदायिक संगठनों का जिक्र तक नहीं है और इन सबसे ऊपर यहां देखिए कि यही पाठ्यक्रम महात्मा गांधी की हत्या के बारे में क्या कहता है - “महात्मा गांधी ने नफरत की आग में झुलसे हुए बंगाल की यात्रा की। उन्होंने साम्प्रदायिकता के उन्माद को रोकने तथा लोगों को क्रूर साम्प्रदायिक नरसंहार से बचाने की कोशिश की। जब स्वतंत्रता का जश्न मनाया जा रहा था और देश में दंगे भी फैले हुए थे, राष्ट्रपिता को नाथूराम गोडसे ने 30 जनवरी को गोली मार दी।” इसके आगे हत्या के बारे में या उस विचार धारा के बारे में जिसने गोडसे को हत्या के लिए प्रेरित किया, कोई टिप्पणी नहीं की गई है। इस तथ्य का कतई उल्लेख नहीं किया गया है कि गांधी जी की हत्या के बाद राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर

भारत सरकार द्वारा पाबंदी लगा दी गई थी, क्योंकि गोडसे का राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू महासभा से करीबी रिश्ता था। गांधी जी की हत्या के मुकदमे और गोडसे द्वारा अपने कृत्य को सही ठहराने की कोशिशों के बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई है।

इसी प्रकार गुजरात पाठ्यपुस्तक मण्डल की कक्षा आठ की सामाजिक ज्ञान की पुस्तक में भी एक छोटा सा परिच्छेद ‘महात्मा गांधी की हत्या’ शीर्षक से है, इसमें लिखा गया है, “स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में भयानक साम्प्रदायिक दंगे हुए। गांधी जी ने इन्हें रोकने की भरसक कोशिशें की। अनेक लोगों को यह पसंद नहीं आया। 30 जनवरी, 1948 को गोडसे के हाथों गांधी जी मारे गए।”

पुनः, उस विचारधारा का विवरण नहीं दिया गया है जो गांधी जी की हत्या के लिए जिम्मेदार थी, हालांकि इस पाठ्यपुस्तक में और दूसरी पाठ्यपुस्तकों में भी उप महाद्वीप के विभाजन के लिए जिम्मेदार ‘कारणों’ को स्पष्ट करने में कड़ी मेहनत की गई है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और इसकी शिशु मंदिर शैली की शिक्षा की सोदेश्य राजनैतिक योजना के लिए यह तार्किक और अपरिहार्य लगता है कि ऐसी एक रैखिक शिक्षा दी जाए जो युवा मन में प्रश्नाकुलता को ही जन्म नहीं लेने दे। चाहे शाखा के स्तर पर हों या शिशु मंदिर के स्तर पर, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसे संगठन एक ऐसा सामाजिक और राजनैतिक वातावरण पैदा करते जा रहे हैं, जहां केवल अर्धसत्य और झूठे भाषण ही हावी होते हैं। कोई और किस तरह ऐसा वातावरण तैयार कर सकता है जहां कभी कोई आलोचनात्मक सवाल ही नहीं पूछे जाते हों, उत्तर देना तो बहुत दूर की बात है। और सबसे बुरा तो यह है कि वर्तमान सामाजिक विषमताओं, असहिष्णुता और अवहेलनाओं को बिल्कुल नजरअंदाज कर दिया जाए। संक्षेप में, सामाजिक और आर्थिक तंत्र को कोई चुनौती न दी जाए ?

लेकिन इस तथ्य पर जरूरी तौर पर खास ध्यान देना चाहिए जिसे आजाद और लोकतांत्रिक भारत की धर्मनिरपेक्ष पाठ्य पुस्तकें बताती हैं, और कभी कभी भयानक समानता के साथ बिल्कुल वही असहिष्णुता विकसित होते और प्रश्नाकुल दिमागों के लिए प्रस्तुत करती है, जो लिंग, जाति और सम्प्रदाय द्वारा संचालित द्वेष और पक्षपात को छिपाने वाले सरल रेखीय सूत्रों के जरिए दिखाया जाता है। है कोई समाधान ? और है कोई बताने वाला ? ◆